International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 3; Issue 3; May 2018; Page No. 100-105

हिन्दी लघुकथा : राष्ट्रीय एकता एवं साम्प्रदायिकता के सन्दर्भ में

खेमकरण
शोधछात्र, हिन्दी विभाग, सरदार भगत सिंह राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रूद्रपुर, ऊधम सिंह नगर, उत्तराखण्ड, भारत।

सारांश
समाजिक और साँस्कृतिक बहुलता, भारत की बड़ी उपलब्धि है। इन्हीं उपलब्धियों के कारण जीवन जीवन्त और राष्ट्रीय एकता मजबूत है। यह भारत की मूलभूत पहचान है जो सदा ही गौरवान्वित करती रही है परन्तु, चिन्ताजनक बिन्दु यह भी है कि साम्प्रदायिक ताकतें, विभिन्न धर्मों के बीच धार्मिक, जातिगत खाईयाँ पैदाकर, जन–मानस को छिन्न–भिन्न, और दंगे करवाकर अपने नापाक उद्देश्य में सफल होती रही हैं। इनका कार्य है अपने धर्म, जाति को सर्वोपरि मानकर, दूसरे धर्म की आलोचना करना और धार्मिक विवाद को बढ़ावा देकर, मानव–मानवता का खून बहाना। इस प्रकार साम्प्रदायिक सोच देश की एकता, अखण्डता को खतरे में डालती है। इन खतरों को हिन्दी कथाकारों ने अपनी लघुकथाओं के माध्यम से रेखांकित किया है। साँझा विरासत के कथाकार मंटो के अतिरिक्त समकालीन हिन्दी लघुकथा के वरिष्ठ हस्ताक्षर असगर वजाहत, मधुदीप, डॉ0 सतीश दुबे, पारस दासोत, सुकेश साहनी, भगीरथ, महेन्द्र सिंह महलान, हबीब कैफी, बलराम अग्रवाल, कमलेश भारतीय, डॉ श्याम सुन्दर दीप्ति, श्यामबिहारी श्यामल, डॉ0 दामोदर खड़से, डॉ0 कमल चोपड़ा, बलराम, माधव नागदा, कस्तूरीलाल तागरा और संतोष सुपेकर आदि कथाकारों की लघुकथाओं में राष्ट्रीय एकता के तत्व प्रमुखता से मिलते हैं। वहीं, इन कथाकारों की लघुकथाएँ, यह भेद भी खोलती है कि साम्प्रदायिक दंगों के पीछे निम्न स्तर की राजनीति, राजनीतिक पार्टियाँ और कट्टरपंथी नेता हैं, जिनके शिकार प्रायः आमजन ही होते हैं। सैकड़ों दंगे–फसाद, हिंसक–शर्मनाक घटनाएँ इनसान होने पर प्रश्न चिह्न हैं। हिन्दी लघुकथा इन सबकी प्रत्यक्षदर्शी रही है। प्रस्तुत शोध–पत्र इन्हीं विषयों पर केन्द्रित है।

मूल शब्द : लघुकथा, राष्ट्रीय एकता, साम्प्रदायिकता, बन्धुत्व, दंगा, अलगाव, वैमनस्य।

प्रस्तावना
हिन्दी साहित्य की समृद्धि, संख्यात्मक और गुणात्मक, दोनों दृष्टिकोण से उच्च है। प्राचीनतम विधा कविता के अतिरिक्त आधुनिक काल के भारतेन्दु युगीन गर्भ में जन्मी लगभग सभी विधाएँ यथा कहानी, उपन्यास, जीवनी, आत्मकथा, नाटक, एकांकी, निबन्ध, रेखाचित्र और संस्मरण इत्यादि अपने सामाजिक, साँस्कृतिक एवं नवीन सौन्दर्यबोध के साथ हिन्दी साहित्य को समृद्ध करती रही हैं। इन सब विधाओं में कविता के उपरान्त विशेषकर कथा साहित्य की हलचल अधिक है। डॉ0 शकुन्तला किरण के शब्दों में, ''हिन्दी गद्य साहित्य में कथा–साहित्य का स्थान विशेष महत्वपूर्ण रहा है। कथाएँ न केवल साहित्य का स्रोत हैं अपितु समस्त मानव–संस्कृति का उजला प्रतिबिम्ब भी है। कथाओं के क्षेत्र में भारत का स्थान विश्व मे सर्वाधिक प्राचीन, समृद्ध एवं गौरवशाली रहा है, जिसके कथा–कोश ने विश्व कथा–साहित्य को किसी न किसी रूप में अवश्य प्रभावित किया है।''[1]

निस्संदेह, हिन्दी गद्य साहित्य में कथा–साहित्य का स्थान विशेष महत्वपूर्ण है। कथा–साहित्य के अन्तर्गत मात्र दो विधाएँ ही चर्चा के केन्द्र में रहती आई हैं–कहानी और उपन्यास। हिन्दी कथा साहित्य की इन दोनों विधाओं ने परतन्त्र भारत में ही अपना स्थान सम्मानजनक बना लिया था। इनके अतिरिक्त कथा साहित्य की तीसरी विधा लघुकथा भी है। यद्यपि लघुकथा विधा की चर्चा कम हुई है क्योंकि इसका स्थान स्वतन्त्र्योत्तर पूर्व कहानी और उपन्यास की तरह सम्मानजनक नहीं था। तथापि इस विधा ने अपनी लघुता और लघुता में दीर्घता का परिचय देते हुए स्वतन्त्र्योत्तर भारत के विपुल हिन्दी साहित्य में अपना स्थान निश्चित किया है। विशेषकर बीसवीं सदी के आठवें दशक में हुए प्रयासों के बाद। आठवाँ दशक अर्थात सन 1971 ई0 से लघुकथा के सामाजिक रूप को चिह्नित करने का प्रयास से तेजी से प्रारम्भ हुआ। नैतिक कथा, बोध–कथा, धार्मिक कथा, लोक कथा, नीतिपरक कथा आदि की सीमा–क्षेत्र से निकल कर सामाजिक–साँस्कृतिक सन्दर्भ और जुड़ाव के कारण ही, वर्तमान में यह विधा समकालीन हिन्दी लघुकथा के नाम से जानी जाती है।

हिन्दी लघुकथा : अर्थ एवं परिभाषा
लघुकथा, दो शब्दों का समुच्चय है–लघु और कथा। लघु का अर्थ लघुता और, कथा का अर्थ है–सामाजिक घटनाओं को साहित्यिक–संवेदनात्मक रूप प्रदान कर कथावस्तु प्रस्तुत करना। ध्यातव्य है कि यह मात्र मनोरंजन की विधा नहीं है अपितु लघुकथा का अर्थ उस लघुआकारीय गद्य रचना से है जो पाठकों को सामाजिक–साँस्कृतिक गतिशीलता, विद्रूपता/विडम्बनाओं इत्यादि से परिचित करवाकर कुछ चिंतन–बिन्दु प्रदान करती है। इन्हीं विशेषताओं के कारण विभिन्न लघुकथाकार विद्वानों ने इसे अपने शब्दों में परिभाषित करने का प्रयास किया है। इन परिभाषाओं से लघुकथा की छवि और अधिक स्पष्ट होती है। प्रस्तुत हैं लघुकथाकारों, विद्वानों, समीक्षकों द्वारा लघुकथा की परिभाषाएँ–

डॉ0 शकुन्तला किरण के अनुसार, ''लघुकथा लघु–आकारीय गद्य–कथात्मक रूप में जीवन के किसी क्षण–विशेष के आन्तरिक सत्य की वह सूक्ष्म एवं तीक्ष्ण अभिव्यक्ति है जो पाठकीय चेतना को झकझोरने के साथ–साथ कोई गम्भीर चिंतन बीज भी प्रदान करें।''[2]

समकालीन हिन्दी लघुकथा की महत्वपूर्ण हस्ताक्षर राजस्थान की डॉ0 शकुन्तला किरण की दृष्टि में लघुकथा एक तीक्ष्ण अभिव्यक्ति है जो पाठक की चेतना को झकझोरने के साथ ही गम्भीर चिंतन

करने के लिए प्रेरित करती है। अतः इस सीमा के अन्तर्गत आने वाली रचनाएँ ही लघुकथा होंगी। किरण जी के विषय में यह भी उल्लेख करना समीचीन होगा कि समकालीन हिन्दी लघुकथा पर प्रथम शोधकार्य उन्हीं का है।

लघुकथा परिभाषित करते हुए डॉ0 बलराम अग्रवाल कहते हैं–''लघुकथा से हमारा तात्पर्य आधुनिक यथार्थबोध की लघ्वाकारीय गद्य कथा–रचना से है, परम्परागत दृष्टांतपरक, नीतिपरक, उपदेशपरक, कथारचना से नहीं।''[3]

समकालीन हिन्दी लघुकथा के वरिष्ठ समीक्षक, शीर्षस्थ लघुकथाकार डॉ0 बलराम अग्रवाल, प्रत्यक्ष रूप से मानते हैं कि लघुकथा वह है जिसमें आधुनिक यथार्थबोध हो। वह अपनी परिभाषा के द्वारा लक्ष्मण रेखा भी खींचते हैं कि परम्परागत, दृष्टांतपरक, नीतिपरक और उपदेशपरक कथा रचना लघुकथा नहीं है। यह परिभाषा उन लघुकथाकारों के लिए आवश्यक है जो वर्तमान में लघुकथा के नाम पर बोधकथा, नैतिक कथा अथवा उपदेशपरक आदि लिख रहे हैं। इस रूप में लिखना लघुकथा की दशा–दिशा के लिए हानिकारक है।

वरिष्ठ साहित्यकार हरिशंकर परसाई के शब्द हैं ''लघुकथा कथात्मक अभिव्यक्ति का लघुत्तम रूप है।''[4]

परसाई जी की लघुकथा सम्बन्धी परिभाषा गागर में सागर भरती है। उनकी परिभाषा से पूर्णतः स्पष्ट है कि कथात्मक अभिव्यक्ति का लघुत्तम रूप लघुकथा है। कथा की विधाओं में इससे लघुत्तम, अन्य कोई भी विधा नहीं।

राष्ट्रीय एकता एवं साम्प्रदायिकता

किसी देश के विकास का आधार उसकी राष्ट्रीय एकता है। राष्ट्रीय एकता से तात्पर्य है देश में रह रहे लोगों की सामाजिक–सांस्कृतिक विभिन्नता में एकजुटता या एक होने का भाव। यह भाव, भाषा, समाज और संस्कृति तीनों स्तरों पर होता है। अर्थात् एक भूखण्ड पर रह रहे विभिन्न धर्मो, बोली–भाषा के लोगों, जन समाज में एकता की भावना ही राष्ट्रीय एकता है। राष्ट्रीय एकता को परिभाषित करते हुए राष्ट्रीय एकता समिति 1961 का कथन है– ''राष्ट्रीय एकता एक मनोवैज्ञानिक एवं शैक्षिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा लोगों के दिलों में एकता, संगठन एवं सन्निकटता की भावना, सामान्य नागरिकता की भावना राष्ट्र के प्रति भक्ति की भावना का विकास किया जाता है।'' इस तरह किसी देश में जब राष्ट्रीय एकता की बात होगी तो उस देश में रह रहे लोगों के सामूहिक जीवन की बात होगी। सामूहिक विकास की बात होगी। सामूहिक आत्मसम्मान की बात होगी। एक होने का भाव होगा। यह भाव ही देश के विकास का प्रमुख द्योतक है।

राष्ट्रीय एकता के अतिरिक्त सम्प्रदाय विशेषण से बना 'साम्प्रदायिकता' एक ऐसा महत्वपूर्ण शब्द है जो विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त होता रहा है। हिन्दी शब्द सागर में सम्प्रदाय के सात अर्थ दिए गए हैं जो निम्नवत हैं –

1. देने वाला, दाता
2. गुरू परम्परागत उपदेश, गुरूमंत्र
3. कोई विशेष सम्बन्धी मत
4. किसी मत के अनुयायियों की मण्डली, फिरका
5. पथ, मार्ग
6. रीति, चलन, परिपाटी
7. दान, भेंट।

वर्तमान में सम्प्रदाय ने अपना उपरोक्त अर्थ खोकर एक मत विशेष के अनुसरण वाले समुदाय के रूप में रूढ़ होकर एक वाद का रूप ग्रहण कर लिया है। एक तरह से यह मानव–विरोधी है। इस सम्बन्ध में हरिकृष्ण रावत कहते हैं–''जब कभी सम्प्रदायवाद, साम्प्रदायिकता, सामुदायिक दृष्टिकोण शब्दों का प्रयोग किया जाता है तब इनका अर्थ दो सम्प्रदायों में विद्यमान विद्वेष, तनाव, संदेह अथवा संघर्ष के भाव को व्यक्त करना होता है। भारत के सन्दर्भ में इस का प्रयोग विशेषतः विभिन्न धार्मिक समुदायों के बीच अलगाव एवं वैमनस्य के भाव को अभिव्यक्त करता है।''[5]

संक्षेप में कहना समीचीन होगा कि साम्प्रदायिकता वह अवधारणा है जो समुदायों के संघर्ष व टकराव के कुछ अन्तर्निहित मूल्यों के कारण सिद्धान्त रूप में सामने आती है। यह क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्या है परन्तु आधुनिक भारत के इतिहास में साम्प्रदायिक समस्या का अर्थ है–देश में बँटवारे के बाद रह रहे हिन्दू समुदाय व मुस्लिम समुदायों के साथ सम्बन्धों का विश्लेषण। गोपीनाथ कालभोर के शब्दों में–''समूहों के हितों के बीच होने वाले टकराव का रूप जब विध्वन्सक और दंगाई हो जाए तो तब साम्प्रदायिक कहलाता है।''[6] यह एक सुगठित व व्यवस्थित और गम्भीर विचारधारा है। इस विचाराधारा से देश की राष्ट्रीय एकता खतरे में पड़ जाती है। समाज में एक भ्रम यह भी व्याप्त है कि साम्प्रदायिकता का सम्बन्ध, धर्म से है। इस सम्बन्ध में वैज्ञानिक चेतना से परिपूर्ण चर्चित कवि नरेश सक्सेना का कथन है, ''साम्प्रदायिकता का धर्म से कुछ लेना–देना नहीं है। यह मनुष्य की पाश्विक प्रवृत्तियाँ हैं जो तरह–तरह के नामों से अपना खेल खेलती हैं। विडम्बना यह है कि 'पशु' संगठित है और तथाकथित मनुष्य असंगठित।''[7]

हिन्दी लघुकथा : राष्ट्रीय एकता एवं साम्प्रदायिकता का प्रश्न

हिन्दी लघुकथा, देश की गतिशीलता पर दृष्टि रखती है। वह जानती है कि देश, सामाजिक–सांस्कृतिक वैविध्य के पश्चात राष्ट्रीय एकता के सूत्र में अवश्य बंधा है परन्तु इसके समानान्तर चिन्ताजनक विषय यह भी है कि साम्प्रदायिक ताकतें, धर्म–जाति की आड़ में जन–मानस को छिन्न–भिन्न कर, अपने नापाक उद्देश्य में सफल होती रही हैं। इनका कार्य है अपने धर्म–जाति को सर्वोपरि मानकर, धार्मिक–जातिगत विवाद को बढ़ावा देकर, मानव–मानवता का खून बहाना। ऐसी साम्प्रदायिक सोच देश की एकता–अखण्डता को खतरे में डालती है। इन खतरों को हिन्दी लघुकथाकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से रेखांकित करने का सफल प्रयास किया है। समकालीन हिन्दी लघुकथा के वरिष्ठ हस्ताक्षर मधुदीप की लघुकथा 'तुम तो सड़कों पर नहीं थे',[8] यही उद्घोष करती है कि दंगा करने के लिए रामनाथ, प्रभुदयाल, महमूद भाई और अहमद मिस्त्री जैसे दो रोटी कमाने खाने वाले व्यक्ति सड़कों पर नहीं थे बल्कि निम्न स्तरीय सोच लिए राजनीति व राजनीतिक पार्टियों के कट्टरपंथी नेता हैं, जिनके शिकार प्रायः आमजन ही होते हैं। सैकड़ों दंगे–फसाद, हिंसक–शर्मनाक घटनाएँ इत्यादि इनसान होने पर प्रश्न चिह्न हैं। समकालीन हिन्दी लघुकथा इन सबकी प्रत्यक्षदर्शी रही है कि साम्प्रदायिक कार्यों से देश की राष्ट्रीय एकता–अखण्डता कमजोर पड़ने लगती है। इसी क्रम में मधुदीप की लघुकथा 'मजहब'[9] की पृष्ठभूमि भी हिन्दू–मुस्लिम दंगा है। इस लघुकथा में एक हिन्दू फौजी, अपने माता–पिता के हत्यारे, दंगाई सोजुद्दीन को बाढ़ग्रस्त इलाके से बचाता है। लघुकथा में फौजी का व्यवहार और इस घटना के बाद दंगाई सोजुद्दीन का हृदय परिवर्तन, दोनों ही घटनाएँ आश्चर्यजनक है! परन्तु समाज और राष्ट्रीय एकता के लिए आवश्यक है सेना का जवान अपनी उदात्त हृदय का परिचय दे। यह बिम्ब ही लघुकथा को ऊँचाई प्रदान करता है। यद्यपि बहुधा

रचनाओं में दंगा होने के वर्षों उपरांत दंगाई का हृदय परिवर्तन हो जाता है, जैसा कि उपरोक्त लघुकथा में चित्रित है। यह शुभ संकेत अवश्य है तथापि इस निष्कर्ष पर पहुँचना समीचीन होगा कि दंगाई के हृदय परिवर्तन तक देश को बहुत नुकसान हो चुका होता है। कस्तूरीलाल तागरा की अप्रकाशित लघुकथा 'वापसी आम नागरिक की' इसी विषय को पुष्ट करती है।

खेमकरण 'सोमन' की लघुकथा 'इनसान'[10] बताती है कि इनसान और इनसानियत खतरे में है। दंगे के कारण अपने प्राण बचाकर भाग रहा युवक, दंगाईयों से तभी बचा रहता हैं जब वह दंगाईयों के एक गुट को अपना नाम राम, और दूसरे गुट को रहीम बताता है। परन्तु जैसे ही वह यह कहता है कि वह राम अथवा रहीम नहीं बल्कि सबसे पहले इनसान है...! तो दंगाईयों द्वारा तुरन्त मार दिया जाता है। इनसानी–सभ्यता के प्रारम्भ से ही युद्ध व दंगे, इनसान की हैसियत बताते रहे हैं। साम्प्रदायिकता, धार्मिक संकीर्णता, मानवता का दम घोटती रही है। इनसे लड़ने की आवश्यकता है। 'सोमन' की लघुकथा का विषय पुराना है। ठीक वरिष्ठ लेखक महेन्द्र सिंह महलान की संवादात्मक शैली में लिखी गई लघुकथा 'पहचान' [11] की तरह–

''कौन?''
''हिन्दू!''
हिन्दुओं ने आगे बढ़कर उसे अपने साथ कर लिया।
''तुम?''
''मुस्लिम?''
मुसलमानों ने उसे गले लगा लिया।
''तुम कौन हो?''
''सिक्ख!''
सिक्खों ने उसे गले लगा लिया।
''और तुम?''
''आदमी!''
सबके पाँव ठिठक गए।[12]

मेहलान जी की लघुकथा ठोस प्रश्न उठाती है कि आदमी, वर्तमान आधुनिक परिवेश में भी मात्र हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख अथवा ईसाई इत्यादि शब्दों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं। इस कारण मानव–संस्कृति के लिए हवा, पानी और धूप का काम करने वाली मानवता बहुत पीछे रह गई है, जबकि राष्ट्रीय एकता, बन्धुत्व की भावना इन्हीं तत्वों से पोषित होती है। अनिवार्य चिंतन बिन्दु यह भी है कि आधुनिकता भी मानव, मानवता और समाज के लिए अभिशाप बन रही है, अन्यथा मानवीय बिखराव से बचाव हेतु किसी मार्ग का नव–निर्माण अवश्य करती।

श्यामबिहारी श्यामल की लघुकथा 'ड्यूटी'[13] में 'ड्यूटी' पर तैनात सिपाही रक्षक के रूप में भक्षक है। शहर में बलवे की शुरूआत लूट के साथ हो चुकी थी। एक समुदाय विशेष की दुकानों पर लूटपाट करने वाले व्यक्तियों से सिपाही का आमना–सामना होता है। सिपाही एक व्यक्ति पर लठ भी जड़ देता है। चारों व्यक्ति लूट का सामान वहीं छोड़कर भाग जाते हैं।

सिपाही के चेहरे पर कुटिल मुस्कान चमक उठती है,''चलो अच्छा हाथ लगा!'' हाथ लगे सामानों में साबुन से भरे कार्टून, रेडियो, टेप, कैमरा और कपड़ों के थान इत्यादि थे। सिपाही शीघ्रता के साथ सारा सामान अपने लिए छिपाकर सुरक्षित करता है और टोपी ठीक करके, लाठी ठोकता हुआ 'ड्यूटी' पर चौकस हो जाता है। परन्तु ऐसी चौकसी किस काम की? ऐसे रक्षकों को देखकर तो देश का संविधान भी रोता होगा? बलवा कर रहे असामाजिक तत्व, कानून के लम्बे हाथों से तो बच गए, कानून की ओट पाकर कानून का रखवाला भी कानून से बच निकला। क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर ऐसा बहुधा होता है! यही समस्याएँ भारतीय संविधान को सफल होने नहीं दे रही है, अन्यथा जिस प्रकार का देश का संविधान है, सही तरह से इसका पालन हो तो देश चमकने लगे। लेकिन हाय रे पुलिस, खाकी वर्दी! अफसरान! काले लिबास में लिपटे वकील! नेता–मन्त्री! सन्तरी! और साम्प्रदायिकता की चादर ओढ़े, विभिन्न राजनीतिक दलों के नेता! कट्टरपंथी ताकतें, कि इनके कारण देश की राष्ट्रीय एकता हमेशा ही खतरे में रहती है।

मधुदीप जी की लघुकथा 'धर्म' भी समाज की बड़ी चिन्ता है। कोई भी धर्म खून–खराबा अथवा दंगे की बात नहीं करता परन्तु राजनीति ने धर्म को अपना मुख्य हथियार बना लिया है। इन हथियारों के प्रयोग से चीजों के बिखरने से राष्ट्रीय एकता खतरे में पड़ जाती है। लघुकथा के माध्यम से मधुदीप, इसी ओर इंगित करना चाह रहे हैं। लघुकथा 'धर्म' [14] का एक अंश है–

वे आए और उसके कानों में 'अल्लाह' फूँककर चले गए।
वे आए और उसके हाथों में 'ऊँ' थमाकर चले गए।
वे आए और उसके काँधों पर 'क्रॉस' लादकर चले गए।[15]

मात्र इन कारणों से शहर के तीनों चौराहे, रात घिरते–घिरते दंगे की गिरफ्त में आ जाते हैं। धार्मिक उन्माद बढ़ता चला जाता है। हास्यापद यह है कि दंगा करवाने वाले कुछ भी थमाकर चले गए, तो चले गए! जनमानस की अपनी समझ–विवेक नामक कुछ चीज भी तो नहीं है! परन्तु...बहुत पहले एडोल्फ हिटलर ने कहा था–लोग तो भेड़–बकरियाँ होते हैं, केवल उन्हें हाँकने वाला चाहिए। ऐसे में यह समझने की आवश्यकता अधिक है कि नेताओं की दृष्टि में जनमानस क्या है और इनको हाँकने का उद्देश्य क्या है? यह समझ आ जाए तो यह भी समझ में आ जाएगा कि हाँकने वाले किसी भी स्तर तक जा सकते हैं। इनके लिए दंगे के समय किसी की माँ, बहन, बहू और बेटी, अपनी हवस को मिटाने का जरिया मात्र है। समग्रता में कहा जाए तो स्त्री, उपभोग–उपयोग की वस्तु मात्र। इस सन्दर्भ में मंटो द्वारा लिखी गई दो पंक्तियों की लघुकथा 'रिआयत'[16] बहुत कुछ सोचने के लिए विवश करती है–

''मेरी आँखों के सामने मेरी जवान बेटी को न मारो।''
''चलो, इसकी मान लो, कपड़े उतार कर हाँक दो एक तरफ।''[17]

विभाजन के दौर पर लिखी गई यह लघुकथा दंगे के समय, स्त्री दशा–दिशा पर चिंतन हेतु स्वयं सूक्ष्म रूप में उपस्थित है। आधी आबादी की रक्षा–सुरक्षा के बिना देश की राष्ट्रीय एकता कदापि संभव नहीं?

अहिंसा के पुजारी महात्मा गांधी से किसी व्यक्ति द्वारा प्रश्न किया गया कि हिन्दुस्तान की ऐसी कौन सी समस्या है जिसे आप सबसे पहले सुलझाना चाहेंगे! गांधी जी का जवाब था–हिन्दू व मुस्लिम की लड़ाई। देश आन्तरिक रूप में आज भी इन समस्याओं से पीड़ित है। अमेरिका–रूस की भांति शीत युद्ध की तरह। इसका खत्म होना ही राष्ट्रीय एकता, हिन्दू–मुस्लिम एकता के लिए अति आवश्यक है। देश–विभाजन के बाद का हिन्दी कथा साहित्य में सैकड़ों उपन्यास/कहानियाँ हिन्दू–मुस्लिम एकता या इनके बीच हुए दंगों पर आधारित हैं। आम जनमानस कभी नहीं चाहता कि दंगा–फसाद हो अथवा राष्ट्रीय एकता खतरे में पड़े। यद्यपि देश वर्तमान में सशक्त है तथापि साम्प्रदायिक दंगे देश के आन्तरिक

क्षेत्रों में यदा–कदा उभरते ही रहे हैं। ऐसे में वरिष्ठ लेखक कमलेश भारतीय की लघुकथा 'पड़ोसी धर्म'[18] की तरह अपना पड़ोसी धर्म याद आना स्वाभाविक है। लघुकथा में पड़ौसी अब्बा मियाँ रमेश की दोनों बहनों को अपनी बेटी मानकर हिफाजत के साथ अपने शहर ले जाते हैं। हिन्दु–मुस्लिम एकता के साथ, मानवता का यह प्रतिमान प्रायः देखने को मिलता है। लघुकथा के शिखर पुरूष युगल की लघुकथा 'कर्फ्यू की वह रात'[19] में राधे की पत्नी अपनी जान पर खेलकर हसनू दर्जी दम्पति के बच्चे को अपनी छाती का दूध पिलाकर साम्प्रदयिक ताकतों के मुँह पर तमाचा मारती है... कर लो जो भी करना है! हम हमेशा साथ हैं। यदि मुसलमान का बच्चा दूध पीने के लिए बिलख रहा है तो एक (हिन्दु) माँ बच्चे को अपना दूध पिलाने अवश्य आएगी। यद्यपि माँ किसी अन्य धर्म से सम्बन्धित ही क्यों न हो! अथवा कर्फ्यू की 'वह रात ही क्यों न हो'। माँ तो माँ है। वह, भूख, प्यास, दंगा, कर्फ्यू नहीं बल्कि बच्चे को देखती है।

हिन्दी लघुकथा में हबीब कैफी की लघुकथा 'पड़ौसी',[20] हबीब कैफी, डॉ0 सतीश दुबे की 'अन्तिम सत्य',[21] बलराम अग्रवाल की 'भरोसा',[22] श्याम सुन्दर दीप्ति की 'बीज से बीज'[23] और खेमकरण 'सोमन' की 'कौन है उधर',[24] साम्प्रदायिक दंगों के समय भी, दो सम्प्रदाय के मानवीय–सम्बन्धों के मजबूत होने की कथा है। वहीं सुकेश साहनी की लघुकथा 'शिनाख्त'[25] मनुष्य को उसकी शर्मिन्दगी का एहसास कराती है। लघुकथा की कथावस्तु है– दंगे में मारे गए लोगों के लिए, मुआवजा स्वरूप मुख्यमंत्री द्वारा पाँच–पाँच लाख रूपए देने की घोषणा। घोषणा के उपरान्त सिर कटी युवती की लाश पर अपना दावा कर रहे एक से अधिक लोग थाने के बाहर खड़े हो जाते हैं। साहनी जी ने इस लघुकथा के माध्यम से आधुनिक समाज का नैतिक पतन, उच्चतम रूप में प्रस्तुत किया है। इसी क्रम में वरिष्ठ लघुकथाकार भगीरथ की लघुकथा 'धार्मिक होने की घोषणा'[26] घोषणा करती है कि अब धार्मिक होने का मापदण्ड है कि हिन्दुओं ने कितने मुसलमान कत्ल किए और मुसलमानों ने कितने हिन्दू कत्ल किए हैं।

रमेश बतरा की लघुकथा 'दुआ'[27] भी सोचने के लिए विवश करती है। इस लघुकथा में स्कूटर वाला, नायक द्वारा किराया न देने के कारण दुआ करता है कि यदि हिन्दू है तो मुसलमान दंगाईयों के हाथ लगे और मुसलमान है तो हिन्दु दंगाईयों में जा फँसे। यद्यपि स्कूटर वाले को किराया न देना गलत है लेकिन नायक के पास पैसे भी तो नहीं। दंगे के कारण वह तो अपने परिवार के लिए चिन्तित है। तात्पर्य है कि अपने लाभ हेतु अथवा हानि के बाद, स्कूटर वाले की तरह आम–जनमानस भी, दूसरों के लिए दुआ–बद्दुआ देने में पीछे नहीं रहते। पूँजीवाद के इस दौर में पूरी दुनिया लाभ–हानि के गणित में सिमट गई है। ऐसे में मानवता कहाँ पर टिकती है? उसका स्थान कहाँ है? सुल्तान अहमद की लघुकथा 'पूजा और नमाज'[28] बच्चों की मानसिक स्थिति पर भी साम्प्रदायिक दंगों का प्रभाव, परिलक्षित करती है। साम्प्रदायिक दंगों के कारण बच्चें भी तो कुछ सोचते हैं! इतना सोचते हैं कि पूजा को नमाज का और नमाज को पूजा का विरोधी शब्द बता देते हैं। उग रही नई पीढ़ी की यह सोच, क्या चिन्ताजनक नहीं? डॉ0 दामोदर खड़से की लघुकथा 'दंगे'[29] में तो एक होटल में दो राजनीतिज्ञों को ही साफ–साफ दंगे की योजना बनाते हुए दिखाया गया है। विदित है कि इन सबके पीछे राजनीतिज्ञों के अपने स्वार्थ और वोट बैंक की राजनीति है। ये राजनीतिज्ञ, आम जनता को धर्म के नाम पर बाँटे रखना चाहते हैं।

लघुकथा वार्षिकी 'संरचना' के संपादक, और प्रसिद्व लघुकथाकार कमल चोपड़ा की लघुकथाएँ हिन्दू–मुस्लिम एकता का आदर्श प्रस्तुत करती हैं, वहीं पाठकों के समक्ष प्रश्न भी छोड़ती हैं। उदाहरणार्थ 'धर्म के अनुसार',[30] 'जो जिन्दा है',[31] 'अपना दर्द',[32] 'एक',[33] 'मजहब'[34] और 'इनसान का जन्म'[35] इत्यादि। कमल चोपड़ा की लघुकथा 'बाँह–बेली'[36] की अंतिम पंक्तियाँ हैं–

> ''एक दूसरे को ढाढ़स देते हुए बोले, ''कसूर तेरे धर्म वालों का हो या मेरे मजहब वालों का.....मर–पिट तो हम रहे हैं न।''

''कैसी शर्मनाक लड़ाई है यह...!' दोनों ने एक–दूसरे की बाँह थामी हुई थी। एक–दूसरे को दिलासा, हिम्मत, ताकत और सहारा देते हुए। असलम, डॉक्टर को दिखाने पहुँचा तो रामचन्द्र भी साथ था। डॉक्टर ने कहा,''तुम्हें फिर से भर्ती होना पड़ेगा...फिर से ऑपरेशन होगा। खून का इन्तजाम करो।''

रामचन्द्र ने झट अपनी बाँह आगे कर दी।[37] यह सौन्दर्यबोध ही लघुकथा को मानवता के पक्ष में खड़ा करता है। इब्ने इन्शा की लघुकथा 'अलग देश',[38] दो देश अर्थात भारत–पाकिस्तान, बनने पर ही एक बड़ा प्रश्न है। प्रश्न तो रमेश बतरा की लघुकथा 'सूअर' [39] भी करती है–

वे हो हल्ला करते हुए एक पुरानी हवेली में जा पहुँचे। हवेली के हाते में सभी घरों के दरवाजे बन्द थे। सिर्फ एक कमरे का दरवाजा खुला था। सब दो–दो, तीन–तीन में बँटकर दरवाजे तोड़ने लगे और उनमें से दो जने उस खुले कमरे में घुस गए।

कमरे में एक ट्रांजिस्टर हौले–हौले बज रहा था और एक आदमी खाट पर सोया हुआ था।

> ''यह कौन है?'' एक ने दूसरे से पूछा।
> ''मालूम नहीं?'' दूसरा बोला, ''कभी दिखाई नहीं दिया मोहल्ले में!''
> ''कोई भी हो'', पहला ट्रांजिस्टर समेटता हुआ बोला, ''टीप दो गला!''
> ''अबे, कहीं आपनी जाति का न हो?''
> ''पूछ लेते हैं इसी से।'' कहते हुए उसने उसे जगा दिया।
> ''कौन हो तुम?'' वह आँखें मलता नींद में ही बोला, ''तुम कौन हो?''
> ''सवाल–जवाब मत करो। जल्दी बताओ वरना मारे जाओगे।''
> ''क्यों मारा जाऊँगा?''
> ''शहर में दंगा हो गया है।''
> ''क्यों...कैसे?''
> ''मस्जिद में सूअर घुस आया।''
> ''तो नींद क्यों खराब करते हो भाई! रात की पाली में कारखाने जाना है।''
> वह करवट लेकर फिर से सोता हुआ बोला, ''यहाँ क्या कर रहे हो?...जाकर सूअर को मारो न!''[40]

रमेश बतरा, लघुकथा की भाषा–शैली, के प्रति सतर्क हैं। कम लघुकथाकार ही, इस ध्यानार्थ उच्च स्तरीय सृजनात्मक कार्य करते प्रतीत होते हैं। इसी कारण बतरा जी की लघुकथा, अंत में जिज्ञासा उत्पन्न करने में सफल रही है कि आगे क्या होगा? वहीं, इस ओर भी ध्यान आकर्षित करती है कि दंगाईयों के लिए, लूट–पाट भी सामान्य हैं। जैसा कि एक दंगाई ट्रांजिस्टर समेटता हुआ बोल रहा था, ''टीप दो गला!'' कहना उचित होगा कि साम्प्रदायिकता की अग्नि में मानवीय अस्तित्व लगभग मूल्यहीन हो गया है। इसी तरह माधव नागदा की लघुकथा 'आग'[41] भी चिन्गारी फेंकने से शुरू होती है। लोग चिन्गारी बुझाने की अपेक्षा, अपने–अपने गुट बनाकर

उस व्यक्ति को खोजने लगते हैं जिसने चिन्गारी फेंकी है। चिन्गारी अब, आग बनकर अपना खेल खेलने लगती है। अर्थ है, छोटी बातों पर ध्यान केन्द्रित करके देश की एकता को सुरक्षित रखा जा सकता है। सांस्कृतिक वैविध्य के कारण शिक्षित समाज को ध्यान देना होगा कि असामाजिक तत्व चिन्गारी फेंककर कभी भी देश की राष्ट्रीय एकता खण्डित कर सकते हैं। इस सन्दर्भ में संतोष सुपेकर की लघुकथा 'महान पाप'[42] सोचने के लिए बाध्य करती है कि धर्मस्थल के चबूतरे पर यदि अपवित्र वस्तुएँ पड़ी हुई मिल जाएँ तो धर्म–प्रमुख द्वारा हो–हल्ला मचाने की जगह, चुपके से अपवित्र वस्तुएँ ही हटा दी जाएँ। इस 'महान पाप' से देश, साम्प्रदायिकता की आग में जलने अथवा, सैकड़ों लोगों की मौत होने से स्वतः ही बच जाएगा। यह लघुकथा, धार्मिक साम्प्रदायिकता के स्थान पर सामाजिकता के पक्ष को मजबूती प्रदान करती है। अतः यह दृष्टि और चिंतन–मनन आवश्यक है कि समाज से धर्म बना है, न कि धर्म से समाज। दो व्यक्तियों का आपसी सम्बन्ध ही स्वस्थ समाज की नींव है। यह भी कि धार्मिकता का प्रश्न पूर्णतः व्यक्ति के स्व से जुड़ा हुआ विषय है। वरिष्ठ चर्चित कथाकार असगर वजाहत की 'गुरू–चेला संवाद'[43] एवं 'शाह आलम कैंप की रूहें'[44] शीषर्क लघुकथाएँ विभिन्न कोणों से साम्प्रदायिकता से एवं स्वतन्त्रता, समानता, बन्धुत्व और धर्मनिरपेक्षता इत्यादि तत्वों को समाप्त करने के लिए प्रयासरत पाशविक चेहरे से परिचय कराती है। असगर जी की लघुकथाओं का वैचारिक पक्ष बहुत मजबूत है। इसी कमी के दृष्टिगत नकारात्मक शक्तियाँ, किसी भी समाज में सरलता से साम्प्रदायिक विचलन पैदा कर देती हैं।

विचारणीय है कि भारत सामाजिक–सांस्कृतिक रूप में समृद्ध है। सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्य, कुछ भिन्नताओं के उपरान्त, लगभग एक जैसे ही हैं। यह कथन, शेष विश्व के सन्दर्भ में भी सोचनीय है। तात्पर्य है विभिन्न धर्म–जातियों की सकारात्मक चेतना के सम्मान से राष्ट्रीय एकता को बल मिलता है। परन्तु प्रायः धर्म के कारण विभिन्न जातियों के बीच वैमनस्य भाव, देश की राष्ट्रीय एकता की आकृति विकृत कर देता है। विचारणीय यह भी है कि जातिगत समस्याएँ, धार्मिक और धार्मिक समस्याएँ, जातिगत बन जाती हैं। पारस दासोत की लघुकथा 'कुआँ और कुँआ',[45] मानवीय षड्यन्त्र को बेनकाब करके प्रतीकात्मक संदेश देती है कि प्रकृति, भेद नहीं करतीं। भेद तो, मानव–संस्कृति की उपज है–

हरिजन लड़की के साथ हुए...बलात्कार के कारण...लम्बी चली आ रही लड़ाई का परिणाम यह हुआ...कि दो हरिजनों की दिन–दहाडे हत्या कर दी गई। गुस्सा...खून बहाने से भी शान्त न हुआ। और दोनों लाशें, गाँव के हरिजन कुएँ में डाल दी गईं...कुएँ का पानी लाल हो गया।

परिणाम यह हुआ...कि कुछ ही दिनों बाद... महाजनी कुएँ का पानी भी लाल हो गया।

पूरे गाँव में दहशत छा गई...।
गोताखोरों को कुएँ में उतारा गया।
परन्तु...
मेंढक...कछुओं... के सिवा कुछ भी हाथ न लगा।
'करें...तो क्या करें...? चारों तरफ से आवाज आने लगी।
भीड़ के पास खड़ा मास्टर... सब–कुछ सुनता रहा।
एक साहूकार ने कहा, 'हमें अपने कुएँ का पानी उलीचकर...उसे पूरी तरह...साफ करना चाहिए।'
यह सब देख–सुनकर... मास्टर बोला–'अगर इस कुएँ को साफ करना ही है... तो चलो मेरे साथ...।'
और...
उसने अपने कदम...हरिजन कुएँ की तरफ बढ़ा दिए।[46]

जातिगत संकीर्णता का यह प्रभाव है कि व्यक्ति की सोचने–समझने की वैज्ञानिकता भी खत्म हो जाती है। सोच–समझ की वैज्ञानिकता, दासोत जी की लघुकथा में मास्टर के पास है। स्पष्ट है मास्टर अर्थात शिक्षक अपने छात्र–छात्राओं, समाज को नवीन दृष्टि दे सकते है जिससे वैज्ञानिक सामाजिक–साँस्कृतिक परिवर्तन की नींव पड़ने की गति में तीव्रता आए, एवं सम्पूर्ण देश, समाज एकता की ओर एवं एक दिशा में अग्रसरित हो सके। इसी तरह वरिष्ठ लघुकथाकार बलराम की लघुकथा 'रफा–दफा'[47] भी दलित परिवार के साथ हो रहे अन्याय को उजागर करती है। देश के भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में दलितों के साथ होने वाली जातिगत हिंसा, शोषण व अन्याय के ऐसे ही अनेक उदाहरण प्रायः मिलते रहते हैं। तात्पर्य है देश में गरीबों, दलितों, आदिवासियों एवं अल्पसंख्यकों के अधिकार भी सुरक्षित हों। इनके अधिकार सुरक्षित होने से देश की आंतरिक व्यवस्था और एकता मजबूत होगी। साम्प्रदायिक वैमनस्य भी कम होंगे। बींसवी सदी के सातवें दशक की उपज नक्सलबाड़ी आंदोलन, इस सन्दर्भ में आज भी देश का ध्यान खींचता है। हिन्दी लघुकथा, अपने कर्त्तव्य का निर्वहन कर निरन्तर इस ओर संकेत करती रही है।

उपसंहार

वर्तमान हिन्दी लघुकथाओं में जहाँ राष्ट्रीय एकता, विश्व बन्धुत्व का सशक्त चित्रण उपस्थित है। वहीं, साम्प्रदायिक ताकतों का भेद खोलने हेतु भी हिन्दी लघुकथा सदैव प्रयासरत रही है। कहना समीचीन होगा कि यह बिन्दु भी इस विधा का उद्देश्य है। समकालीन लघुकथाकारों द्वारा देश की राष्ट्रीय एकता और साम्प्रदायिक दंगों के पीछे रहे मानवीय कारणों पर खुलकर लिखा जा रहा है। यद्यपि अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता पर हमले हो रहे हैं तथापि उनकी प्रतिबद्धता, सम्प्रदायिक दंगे–फसादों के विरोध में और मानवता के पक्ष में हैं। अपनी लघुकथाओं द्वारा लघुकथाकार आम जनमानस को जागरूक करते रहे हैं कि साम्प्रदायिक दंगों के पीछे अपने ही बीच रह रहे असामाजिक तत्वों का हाथ है। यह भी कि धर्म, बोली–भाषा और पहचान के नाम पर कट्टरपंथियों के उकसावे–बहकावे में न आएँ अपितु मिल–जुलकर राष्ट्रीय एकता में बाधित इन असामाजिक तत्वों को समझने का प्रयास करें। निष्कर्ष रूप में कहना समीचीन होगा कि हिन्दी लघुकथा, उन सभी कारकों को रेखांकित कर रही है जिनसे राष्ट्र की राष्ट्रीय एकता मजबूत होती है। वहीं, साम्प्रदायिक शक्तियों को चिह्नित कर अपनी सामाजिक–यथार्थवादी भूमिका द्वारा प्रतिरोध की संस्कृति की जमीन भी तैयार कर रही है। यह भी दृष्टव्य कि साँस्कृतिक बहुलता और प्रतिरोध की संस्कृति ही किसी देश को सजीव बनाए रहती हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. किरण, डॉ0 शकुन्तला, हिन्दी लघुकथा, संकेत प्रकाशन, अजमेर, संस्करण 2010, पृष्ठ संख्या 15
2. वही, पृष्ठ संख्या 211
3. अग्रवाल, डॉ0 बलराम, पीले पंखों वाली तितलियाँ, भूमिका–सूर्यकांत नागर, राही प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2015, फ्लैप एक
4. परसाई, हरिशंकर, साक्षात्कार, लघुकथा–विमर्श, सम्पादक–डॉ0

रामकुमार घोटड़, अयन प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2009, पृष्ठ संख्या 27
5. मेरा गाँव मेरा देश, एक देशज ब्लॉग, गूगल
6. मेरा गाँव मेरा देश, एक देशज ब्लॉग, गूगल
7. नरेश सक्सेना, कथाक्रम, जुलाई–सितम्बर 2003, सम्पादक–शैलेन्द्र सागर, लखनऊ, पृष्ठ संख्या 134
8. मधुदीप, पड़ाव और पड़ताल, खण्ड–3, दिशा प्रकाशन, नई दिल्ली, सम्पादक–मधुदीप, संस्करण 2014, पृष्ठ संख्या 42
9. मधुदीप, समय का पहिया, दिशा प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2015, पृष्ठ संख्या 78
10. 'सोमन' खेमकरण, कथाक्रम, सम्पादक, शैलेन्द्र सागर, लखनऊ, अक्टूबर–दिसंबर 2009, पृष्ठ संख्या 33
11. महलान, महेन्द्र सिंह, पड़ाव और पड़ताल, खण्ड–8, सम्पादक–प्रबोधकुमार गोविल, दिशा प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 54
12. वही, पृष्ठ संख्या 54
13. श्यामल, श्याम बिहारी, पड़ाव और पड़ताल, खण्ड–14, सम्पादक–मधुदीप, दिशा प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 106
14. मधुदीप की 66 लघुकथाएँ और उनकी पड़ताल, सम्पादक–उमेश महादोषी, दिशा प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 107–108
15. वही, पृष्ठ संख्या 107
16. मंटो, हिन्दी लघुकथा, डॉ0 शकुन्तला किरण, संकेत प्रकाशन, अजमेर, संस्करण 2010, पृष्ठ 49
17. वही, पृष्ठ संख्या 49
18. भारतीय, कमलेश, ऐसे थे तुम, अमन प्रकाशन, हरियाणा, संस्करण 2008, पृष्ठ संख्या 22
19. युगल, पड़ाव और पड़ताल, खण्ड–2, सम्पादक–बलराम अग्रवाल, दिशा प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2014, पृष्ठ संख्या 102
20. हबीब कैफी, बीसवीं सदी : प्रतिनिधि लघुकथाएँ, जनसुलभ पेपरबेक्स, बरेली, सम्पादक–सुकेश साहनी, संस्करण सितम्बर 2002, पृष्ठ संख्या 142–143
21. डॉ0 सतीश दुबे, पड़ाव और पड़ताल, खण्ड–3, सम्पादक–मधुदीप, दिशा प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2014, पृष्ठ संख्या 90–91
22. अग्रवाल, डॉ0 बलराम, पीले पंखों वाली तितलियाँ, राही प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2015, पृष्ठ संख्या 22–23
23. श्याम सुन्दर दीप्ति, गैर हाजिर रिश्ता, राही प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2014, पृष्ठ संख्या 15,
24. 'सोमन' खेमकरण, पड़ाव और पड़ताल, खण्ड–15, सम्पादक–मधुदीप, दिशा प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2015, पृष्ठ संख्या 57
25. साहनी सुकेश, पड़ाव और पड़ताल, खण्ड–2, सम्पादक–बलराम अग्रवाल, दिशा प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2014, पृष्ठ संख्या 126
26. भगीरथ, पड़ाव और पड़ताल, खण्ड–2, सम्पादक–बलराम अग्रवाल, दिशा प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या पृष्ठ संख्या 84
27. बतरा रमेश, पड़ाव और पड़ताल, खण्ड–3, सम्पादक–मधुदीप, दिशा प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 60
28. अहमद, सुल्तान, बीसवीं सदीः प्रतिनिधि लघुकथाएँ, सम्पादक–सुकेश साहनी, संस्करण 2002, पृष्ठ संख्या 139
29. खड़से, डॉ0 दामोदर, पड़ाव और पड़ताल, खण्ड–8, सम्पादक–प्रबोधकुमार गोविल, दिशा प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या संख्या 36
30. चोपड़ा, कमल, अनर्थ, अयन प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण, 2015, पृष्ठ संख्या 29
31. वही, पृष्ठ संख्या 137
32. वही, पृष्ठ संख्या 155–156
33. वही, पृष्ठ संख्या 52
34. वही, पृष्ठ संख्या 31–32
35. वही, पृष्ठ संख्या 66–67
36. वही, पृष्ठ संख्या 56
37. वही, पृष्ठ संख्या 57
38. इब्ने इन्शा, विश्व साहित्य से लघुकथाएँ, सम्पादक–अशोक भाटिया, पृष्ठ संख्या 13
39. बतरा, रमेश, पड़ाव और पड़ताल, खण्ड–3, संपादक–मधुदीप, संस्करण 2014, पृष्ठ संख्या 54
40. वही, पृष्ठ संख्या 54
41. नागदा, माधव, पड़ाव और पड़ताल, खण्ड–4, संपादक–भगीरथ, संस्करण 2014, पृष्ठ संख्या 54
42. सुपेकर, संतोष, अविराम साहित्यिकी, संपादक– उमेश महादोषी, अक्टूबर–दिसम्बर 2012, पृष्ठ संख्या 90
43. असगर वजाहत, पिचासी कहानियाँ, साहित्य उपक्रम दिल्ली, संस्करण–फरवरी 2015, पृष्ठ संख्या 250
44. वही, पृष्ठ संख्या 299
45. दासोत, पारस, लघुकथा : देश–देशान्तर, संपादक–सुकेश साहनी, रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु', संस्करण 2013, पृष्ठ संख्या 113–114
46. वही, पृष्ठ संख्या 113–114
47. बलराम, अविराम साहित्यिकी, संपादक– उमेश महादोषी, अक्टूबर–दिसम्बर 2012, पृष्ठ संख्या 59